होलिकोत्सव - एक वैदिक सोमयज्ञ

डॉ. मनीषा शर्मा
प्राचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, जयपुर

हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, मौज-मस्ती और सामाजिक मेल-जोल का प्रतीक लोकप्रिय पर्व होली अथवा होलिका वास्तव में एक वैदिक यज्ञ है, जिसका मूल स्वरूप आज विस्मृत हो गया है। होली के आयोजन के समय समाजमें प्रचलित हँसी-ठिठोली, गायन-वादन, चाँचर (हुड़दंग) और कबीर इत्यादि के उद्भव और विकासको समझनेके लिये हमें उस वैदिक सोमयज्ञ के स्वरूप को समझना पड़ेगा, जिसका अनुष्ठान इस महापर्वके मूल में निहित है।

वैदिक यज्ञों में सोमयज्ञ सर्वोपरि है। वैदिक काल में प्रचुरता से उपलब्ध सोमलताका रस निचोड़कर उससे जो यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे, वे सोमयज्ञ कहे गये हैं । यह सोमलता कालान्तर में लुप्त हो गयी। ब्राह्मणग्रन्थों में इसके अनेक विकल्प दिये गये हैं, जिनमें पूतीक और अर्जुनवृक्ष मुख्य हैं। अर्जुनवृक्ष को हृदयके लिये अत्यन्त शक्तिप्रद माना गया है। आयुर्वेद में इसके छाल की हृदयरोगों के निवारण के संदर्भ में विशेष प्रशंसा की गयी है। महाराष्ट्र में सम्प्रति सोमयागों के अनुष्ठान में राँशेर नामक वनस्पतिका प्रयोग किया जाता है। सोमरस इतना शक्तिवर्धक और उल्लासकारक होता था कि उसका पानकर वैदिक ऋषियों को अमरता-जैसी आनन्दानुभूति होती थी - ' अपाम सोममृता अभूम' (ऋग्वेद)।

इन सोमयागो के तीन प्रमुख भेद थे- एकाह, अहान और सत्रयाग। यह वर्गीकरण अनुष्ठान-दिवसों की संख्याके आधार पर है। सत्रयाग का अनुष्ठान पूरे वर्षभर चलता था। उनमें प्रमुखरूप से ऋत्विग्गण ही भाग लेते थे और यज्ञका फल ही दक्षिणा के रूप में मान्य था। गवामयन भी इसी प्रकार का एक सत्रयाग है, जिसका अनुष्ठान ३६० दिनोंमें सम्पन्न होता है। इसका उपान्त्य (अन्तिम दिन से पूर्व का) दिन 'महाव्रत' कहलाता है । 'महाव्रत' में प्राप्य 'महा' शब्द वास्तव में प्रजापतिका द्योतक है, जो वैदिक परम्परा में संवत्सर के अधिष्ठाता माने जाते हैं और उन्हीं पर सम्पूर्ण वर्ष की सुख-समृद्धि निर्भर है । 'महाव्रत' के अनुष्ठानका प्रयोजन वस्तुतः इन प्रजापति को प्रसन्न करना है - 'प्रजापतिर्वाव महाँस्तस्यैतद् व्रतमन्नमेव [यन्महाव्रतम्']।

महाव्रत' के अनुष्ठान के दिन वर्षभर यज्ञानुष्ठान में व्यस्त श्रान्त - क्लान्त ऋत्विग्गण अपना मनोविनोद करते थे। इस दिन यज्ञानुष्ठान के साथ कुछ ऐसे आमोद-प्रमोदपूर्ण कृत्य भी किये जाते थे, जिनका प्रयोजन आनन्द और उल्लासमय वातावरणकी सृष्टि करना है। होलिकोत्सव इसी महाव्रत की परम्परा का संवाहक है। होली में जलायी जाने वाली आग

यज्ञवेदी में निहित अग्रिका प्रतीक है। वैदिक युग में इस यज्ञवेदी के समीप एक उदुम्बरवृक्ष (गूलर) - की टहनी गाड़ी जाती थी, क्योंकि गूलर का फल माधुर्य गुण की दृष्टि से सर्वोपरि माना जाता है। 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' में कहा गया है कि जो निरन्तर चलता रहता है, कर्ममें निरत रहता है, उसे गूलर के स्वादिष्ठ फल खाने के लिये मिलते हैं- 'चरन् वै मधु विन्देत चरन्स्वादुमुदुम्बरम्' (ऐतरेय ब्राह्मण) । गूलर का फल इतना मीठा होता है कि पकते ही इसमें कीड़े पड़ने लगते हैं। उदुम्बरवृक्ष की यह टहनी सामगान की मधुमयता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती थी। इसके नीचे बैठे हुए वेदपाठी अपनी-अपनी शाखा के मन्त्रों का पाठ करते थे। सामवेद के गायकों की चार श्रेणियाँ थीं- उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य। पहले ये सामगान के अपने-अपने भाग को गाते थे, फिर सभी मिलकर एक साथ समवेतरूप से गान करते थे। होलीमें लकड़ियों को चुनने से लगभग दो सप्ताह पूर्व गाड़ी जाने वाली एरण्डवृक्ष की टहनी इसी औदुम्बरी (उदुम्बरकी टहनी) का प्रतीक है। धीरे-धीरे जब उदुम्बरवृक्ष का मिलना कठिन हो गया तो अन्य वृक्षों की टहनियाँ औदुम्बरी के रूप में स्थापित की जाने लगीं। एरण्ड एक ऐसा वृक्ष है, जो सर्वत्र सुलभ माना गया है। संस्कृत में एक कहावत है, जिसके अनुसार जहाँ कोई भी वृक्ष सुलभ न हो, वहाँ एरण्ड को ही वृक्ष मान लेना चाहिये-- 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।' उद्गाता तो उदुम्बर काष्ठ से बनी आसन्दी पर ही बैठकर सामगान करता है। सामगाताओं की यह मण्डली महावेदी के विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर पृथक्-पृथक् सामों का गान करती थी। सामगान के अतिरिक्त महाव्रत- अनुष्ठान के दिन यज्ञवेदी के चारों ओर, सभी कोणों में दुन्दुभि अर्थात् नगाड़े भी बजाये जाते थे- 'सर्व्वासु स्रक्तिषु दुन्दुभयो व्वदन्ति' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।५।१८)। इसके साथ ही जलसे भरे घड़े लिये हुई स्त्रियाँ 'इदम्मधु इदम्मधु' (यह मधु है, यह मधु है), कहती हुई यज्ञवेदी के चारों ओर नृत्य करती थीं- 'परिकुम्भिन्यो मार्जालीयं यन्ति, इदं मध्विति' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।६।१५) । ताण्ड्य ब्राह्मण में इसका विशद विवरण उपलब्ध होता है। उस समय वे निम्नलिखित गीतको गाती भी जाती थीं-

गावो हाऽऽरे सुरभय इदम्मधु, गावो घृतस्य मातर इदम्मधु।

इस नृत्य के समानान्तर अन्य स्त्रियाँ और पुरुष वीणावादन करते थे। उस समय प्रचलित वीणाओं के अनेक प्रकार इस प्रसंग में मिलते हैं। इनमें अपघाटिला, काण्डमयी, पिच्छोदरा, बाण इत्यादि मुख्य वीणाएँ थीं। 'शततन्त्री का' नाम से विदित होता है कि कुछ वीणाएँ सौ-सौ तारों वाली भी थीं। इन्हीं शततन्त्री का - जैसी वीणाओं से सन्तूर का विकास हुआ। कल्पसूत्रों में महाव्रत के समय बजायी जाने वाली कुछ अन्य वीणाओं के नाम भी मिलते हैं। ये हैं- अलाबु, वक्रा (समतन्त्री का, वेत्रवीणा), कापिशीर्णी, पिशीलवीणा (शूर्पा) इत्यादि। शारदीया वीणा भी होती थी, जिससे आगे चलकर आज के सरोद का विकास हुआ।

होली में दिखने वाली हँसी-ठिठोली का मूल 'अभिगर- अपगर-संवाद' में निहित है। भाष्यकारों के अनुसार 'अभिगर' ब्राह्मणका वाचक है और 'अपगर' शूद्रका। ये दोनों एक- दूसरे पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप करते हुए हास-परिहास करते थे। इसी क्रम में विभिन्न प्रकार की बोलियाँ बोलते थे, विशेषरूप से ग्राम्य बोलियाँ बोलने का प्रदर्शन किया जाता था

- 'सर्व्वा त्वाचो वदन्ति संस्कृताश्च ग्राम्यवाचश्च' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।५।२० तथा उसपर सायण- भाष्य)।

महाव्रत के ये विधान वर्षभर की एकरसता को दूर कर यज्ञानुष्ठाता ऋत्विजों को स्वस्थ मनोरञ्जन का वातावरण प्रदान करते थे। यज्ञों की योजना ऋषियों ने मानव-जीवन के समानान्तर की है, जिसके हास-परिहास अभिन्न अङ्ग हैं।

महाव्रत के दिन घर-घरमें विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ठ पक्वान्न बनाये जाते थे-'कुले कुलेऽन्नं क्रियते।' घर में कोई जब उस दिन पक्वान्नों को बनाये जाने का कारण पूछता था, तब उत्तर दिया जाता था कि यज्ञानुष्ठान करने वाले इन्हें खायेंगे - 'तद् यत् पृच्छेयुः किमिदं कुर्वन्ति इति इमे यजमाना अन्नमत्स्यन्ति इति ब्रूयुः।'

लेकिन हास-परिहास और मौज-मस्ती के इस वातावरण में भी सुरक्षा के संदर्भ को ओझल नहीं किया जाता था। राष्ट्ररक्षा के लिये जनमानस को सजग बने रहने की शिक्षा देने के लिये इस अवसर पर यज्ञवेदी के चारों ओर शस्त्रास्त्र और कवचधारी राजपुरुष तथा सैनिक परिक्रमा भी करते रहते थे।

होली के आयोजन में महाव्रत के इन विधि-विधानों का प्रभाव अद्यावधि निरन्तर परिलक्षित होता है। दोनों के अनुष्ठान का दिन भी एक ही है- फाल्गुनी पूर्णिमा।

प्रारम्भ में उत्सवों और पर्वों का आरम्भ अत्यन्त लघु बिन्दुसे होता है, जिसमें निरन्तर विकास होता रहता है। सामाजिक आवश्यकताएँ इनके विकास में विशेष भूमिका निभाती हैं। यही कारण है कि होली जो मूलतः एक वैदिक सोमयज्ञ के अनुष्ठान से आरम्भ हुआ, आगे चलकर परम भागवत प्रह्लाद और उनकी बुआ होलिका के आख्यान से भी जुड़ गया। गवामयन के अन्तर्गत महाव्रत के इस परिवर्धित और उपबृंहित पर्व-संस्करण में 'नव-शस्येष्टि' (नयी फसलके

अनाज का सेवन करनेके लिये किया गया यज्ञानुष्ठान) तथा मदनोत्सव अथवा वसन्तोत्सवका समावेश भी इसी क्रम में आगे हो गया।

मानव-जीवन में धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ काम भी एक पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। 'कामस्तदग्रे समवर्ततताधि कहकर वेदों ने भी इसे स्वीकार किया है। नृत्य-संगीत प्रभृति समस्त कलाएँ, हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद तथा आनन्द और उल्लास इसी तृतीय पुरुषार्थ के नानाविध अङ्ग हैं। होलिकोत्सव के रूप में हिन्दू-समाज ने मनोरञ्जन को जीवन में स्थान देने के लिये तृतीय पुरुषार्थ के स्वस्थ और लोकोपयोगी स्वरूपको धर्माधिष्ठित मान्यता प्रदान की है, जैसा कि गीता में भगवान् श्रीकृष्णका स्पष्ट कथन है-

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। हे अर्जुन! मैं प्राणियों में धर्मानुकूल काम-प्रवृत्ति हूँ।